बोलो.... तुम क्या चुप बैठोगे

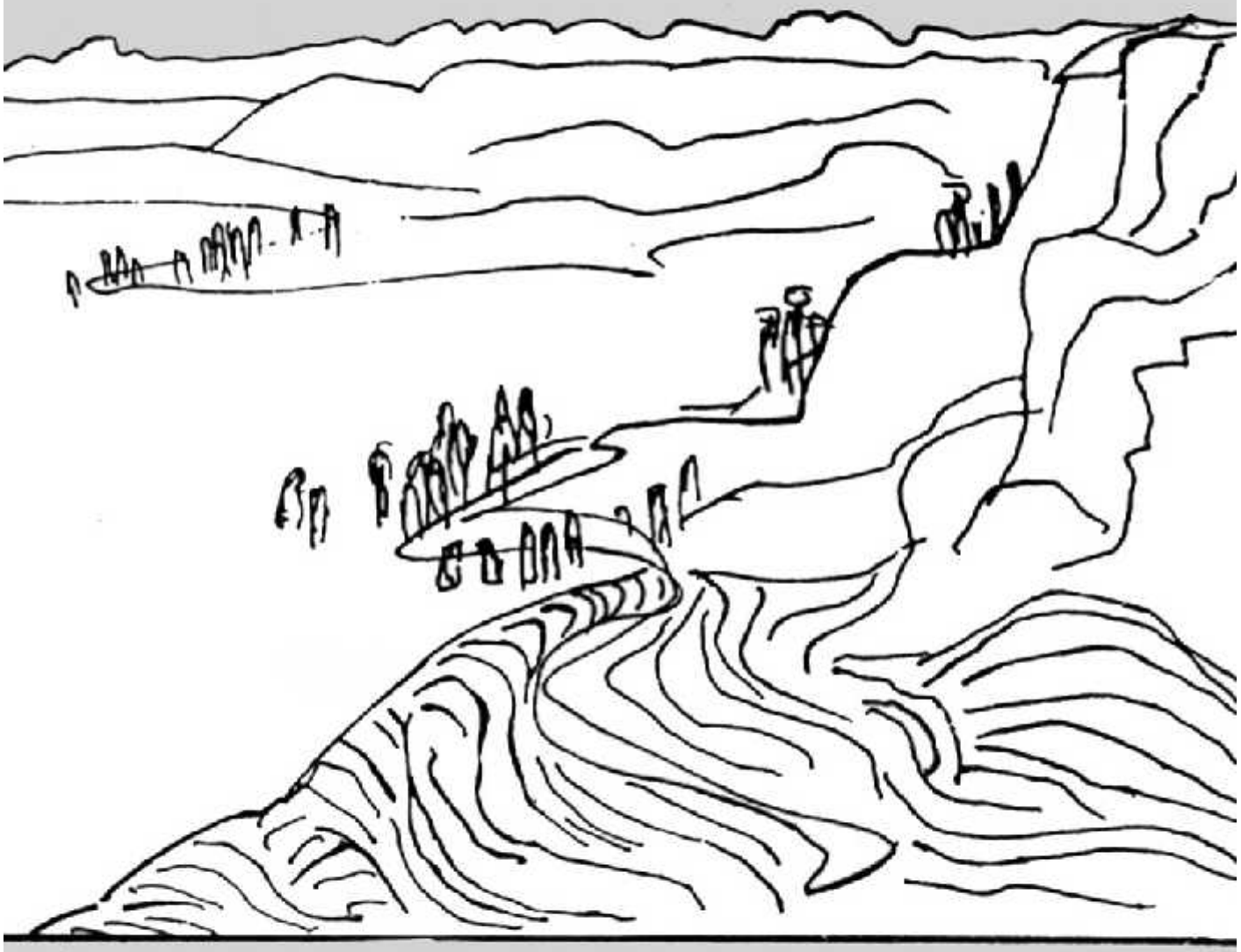

पल-पल मरती नर्मदा का सवाल

सुधा चौहान

☐ बोलो... तुम क्या चुप बैठोगे : सुधा चौहान की नर्मदा पर एक लंबी कविता
☐ रेखांकन : अमृतलाल वेगड़
☐ पेजों के लोगो 'पीपुल्स एक्शन' से साभार

☐ प्रथम संस्करण : सितंबर, 1989

☐ सहयोग राशि : पांच रुपए

हमारी इच्छा है, इस कविता का उपयोग ॲक्नॉलिजमेन्ट के साथ अधिक से अधिक हो।

एकलव्य
ई-1/208, अरेरा कॉलोनी
भोपाल-462 016.

नर्मदा पर बनने वाले बांधों से होने वाली जन-धन हानि का विश्लेषण कई प्रकार से किया गया है—लाभ-हानि के आंकड़े, डूबने वाली ज़मीन और जंगल के आंकड़े, विस्थापितों के आंकड़े आदि।

इन आंकड़ों से यह बात तो ज़रूर उभरती है कि ये बांध जनहित में नहीं हैं। लेकिन पूरी घाटी के जनजीवन पर जो प्रभाव पड़ेंगे, उन्हें आंकड़ों में ढूंढना मुश्किल काम है। इसका एक प्रभावशाली और मार्मिक अहसास सुधा चौहान की प्रस्तुत कविता में ज़्यादा तीखे रूप में उभरता है।

— एकलव्य ग्रुप

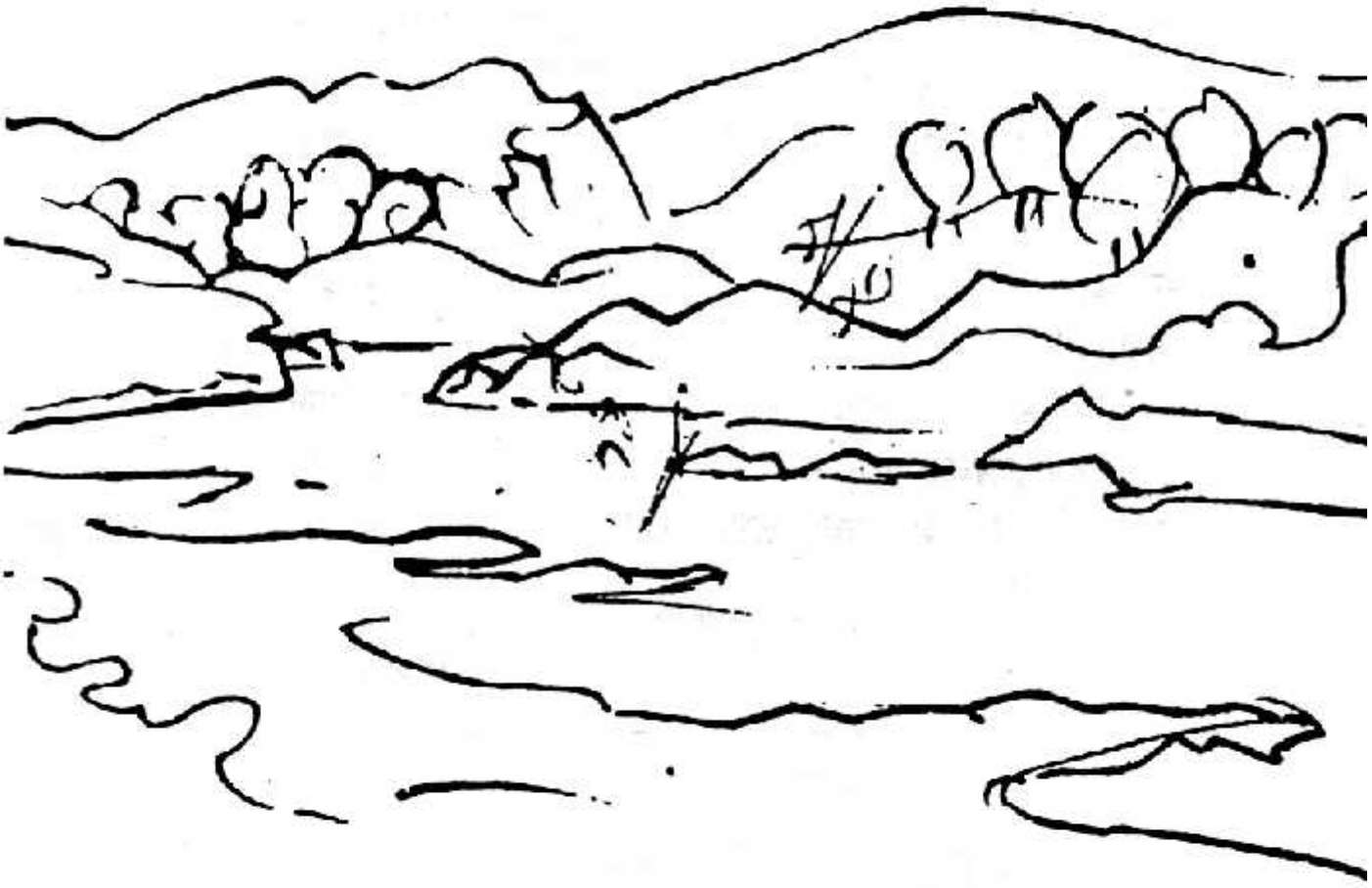

तुम क्यों पूछ रहे हो मेरी
जीवन गाथा राम कहानी
शुरू कब हुई कब बीतेगी
बातें ये मेरी अनजानी
जैसे तारे चांद चल रहे
जैसे हवा निरंतर बहती
जैसे अपनी एक धुरी पर
पृथ्वी हरदम घूमा करती

वैसे ही धरती की बेटी
पर्वत जंगल की मैं पाली
इन जैसा ही मेरा जीवन
धारा इनके समरस ढाली
गति से जीवन पाती हूं मैं
अपनों को जीवन गति देती
थमना रुकना और ठहरना
अनजानी ये बातें मेरी

मेरी और दूसरी बहनें
ऊंचे हिम पर्वत की पाली
जनम नहीं हिम ढके शिखर में
उनका स्रोत अथाह अमानी

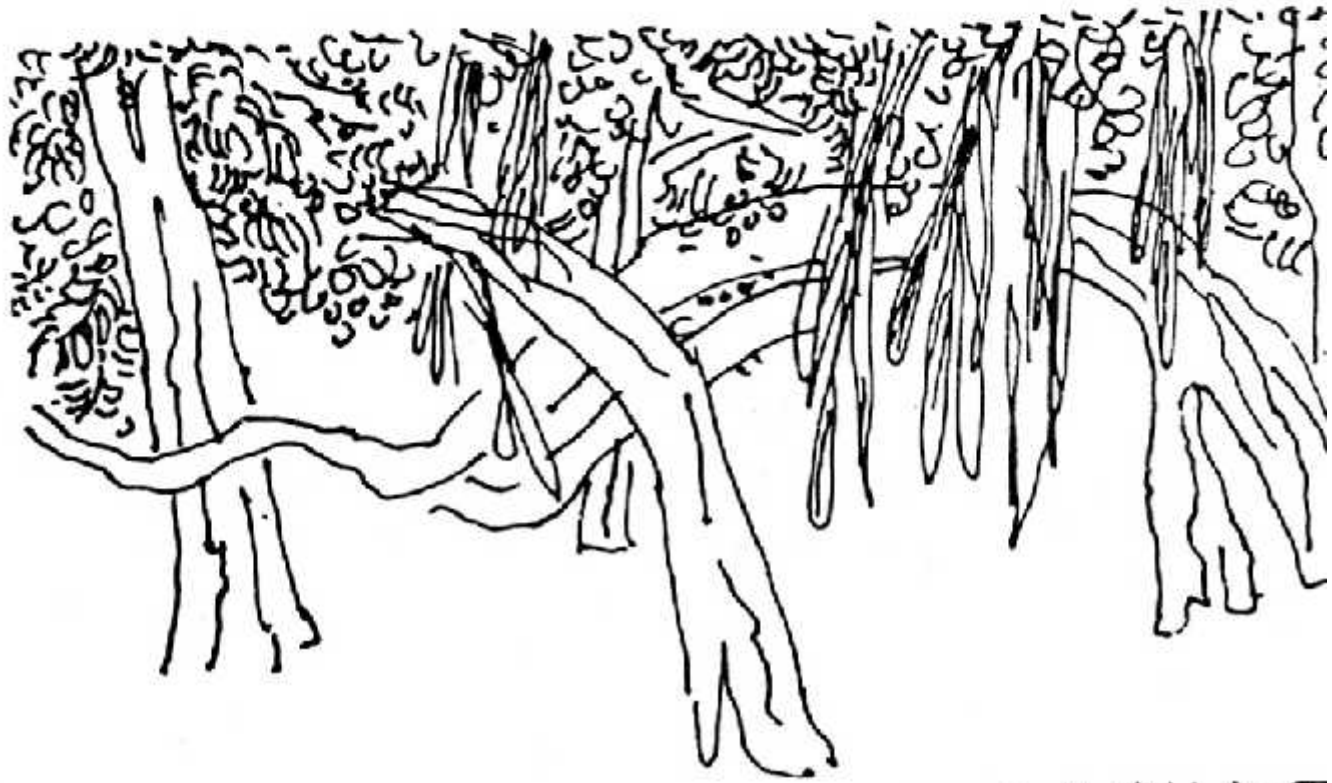

पर इन सबसे अलग तरह की
जनम कथा है साधारण सी
नन्हीं सी शुरूआत हुई थी
मध्य देश की फैली धरती

ढका हरे पेड़ों से रहता
सब दिन, नाम अमरकंटक है
ऊंचे नीचे कई पहाड़ों का
वह सुंदर सा जमघट है

वर्षा वहां घनी होती है
जमकर जाड़ा भी पड़ता है
सूरज जी भरकर तपता है
पर जंगल की घनी छांव में
किरणों का धंसना मुश्किल है

उन्हीं पहाड़ी ढलवानों में
भीगी धरती झील बन गई
जनम दिया रेवा को उसने
तीरथ सी वह भूमि पुज गई
दुबली पतली नदी नर्मदा
चपल चंचला भरे चौकड़ी

छल छल छल छल बहती रहती
उछल कूद कर ढलवानों पर
आगे आगे बढ़ती चलती
जंगल और पेड़ पौधों से,
चार पांव पर चलने वाले
बाघ बघेरा, हिरन, गाय से,

रंग बिरंगे पर को तौले
आसमान को रही नापती
उन प्यारी प्यारी चिड़ियों से,
और उन्हीं में घुल मिल करके
रहने वाले गौंड भील से,
मुझे बड़ा गहरा लगाव है
वे ही मेरे सखा बंधु हैं
कुछ कुछ मां का बेटे के संग
ममता का ऐसा रचाव है

मेरी दुनिया रंग रंगीली
हरी-भरी जीवन रस भीनी
सीधे ऊंचे सागौनों पै
सजते चौड़े चकले पत्ते

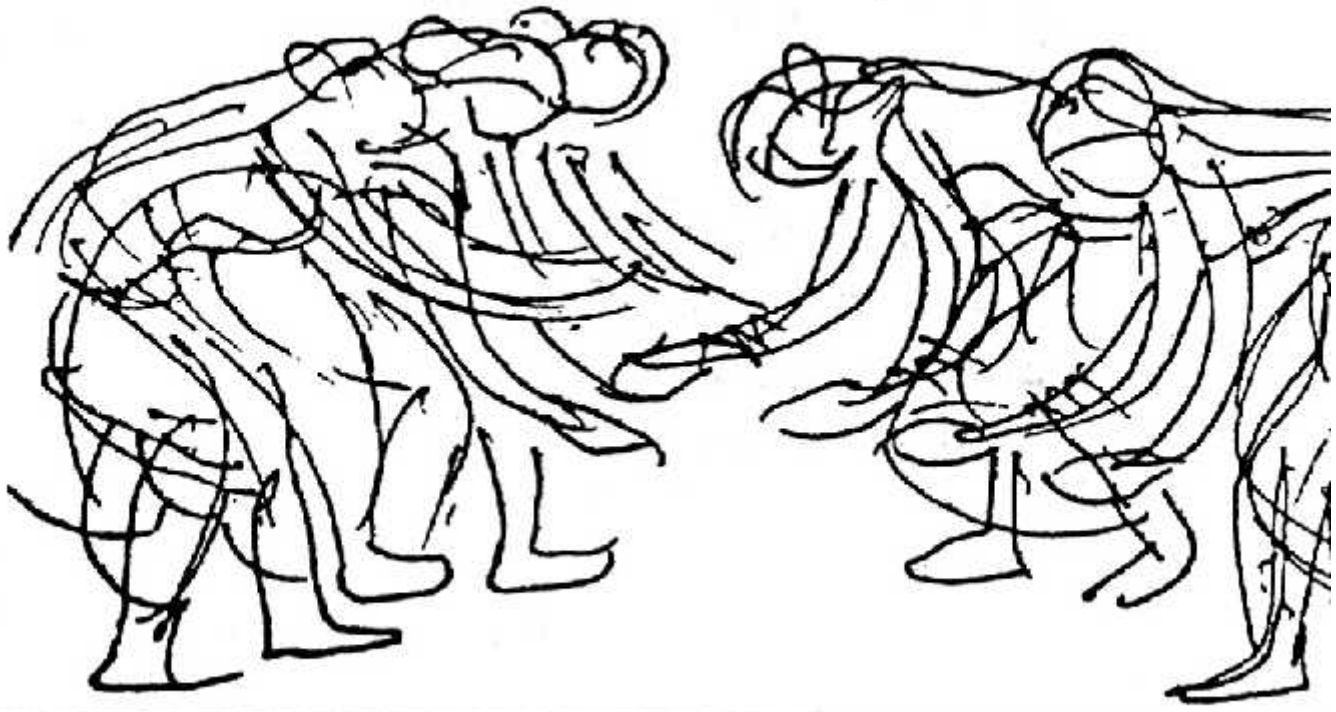

तेंदू और सलाई फंसी
झुंड बांस के सरसर करते
शीशम हरियाता गरमी में
महुआ मुंह अंधियारे टपके
भाई बंद इन्हीं के जैसे
चीतल भालू और तेंदुआ
भेड़ भेड़िया नील गाय के
झुंड इन्हीं के बीच विचरते

मेरे साथी कितने सारे
नाम गिनाऊं मैं किन किन के
रात और दिन जीवन चलता
इनका मुझसे, मेरा इनसे

मैं जंगल पहाड़ की बेटी
जीवन मेरा इसी सहारे
दिन तेंदू का पत्ता बिनते
भोर अंधेरे महुआ चुनते
लपसी महुआ की मिल जाए
वही मिठाई हलुआ जिनकी
थोड़े में उनका जी भरता
थोड़े में संसार संवरता

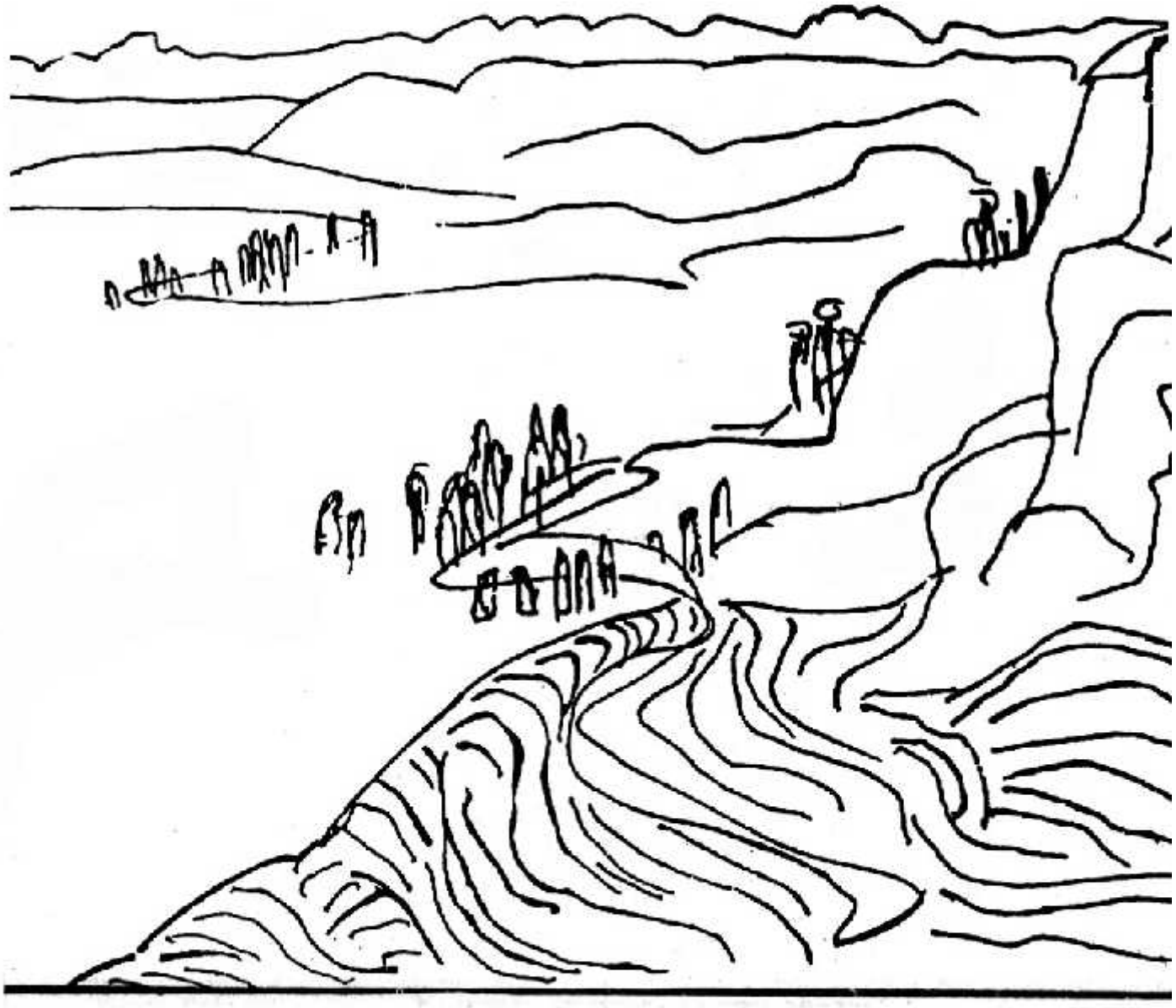

दुनिया में कितना क्या मिलता
इससे कोई फ़रक न पड़ता
मेरा मन इनमें ही रमता
ये नाता है सदा सदा का

चलती चलती जहां पहुंचती
अपने इन हेली मेली से
मिलती उनके दुख सुख सुनती
बच्चों के संग दौड़ लगाती
लुकती छिपती और उछलती
इसी तरह मैं आगे बढ़ती।

राह नहीं सीधी-सी मेरी
कभी सपाट कभी पथरीली
ऊंची नीची है ऐसी भी
गिरूं अचित्ते ज्यों पताल में
हर हर करती, चट्टानों से
लड़ती टकराती बलखाती
नीचे से ऊपर ताकूं तो
छर छर गिरती बूंद करोड़ों
धुंआ सरीखी छाई, आंखों
को ढक देतीं, देख न पाती

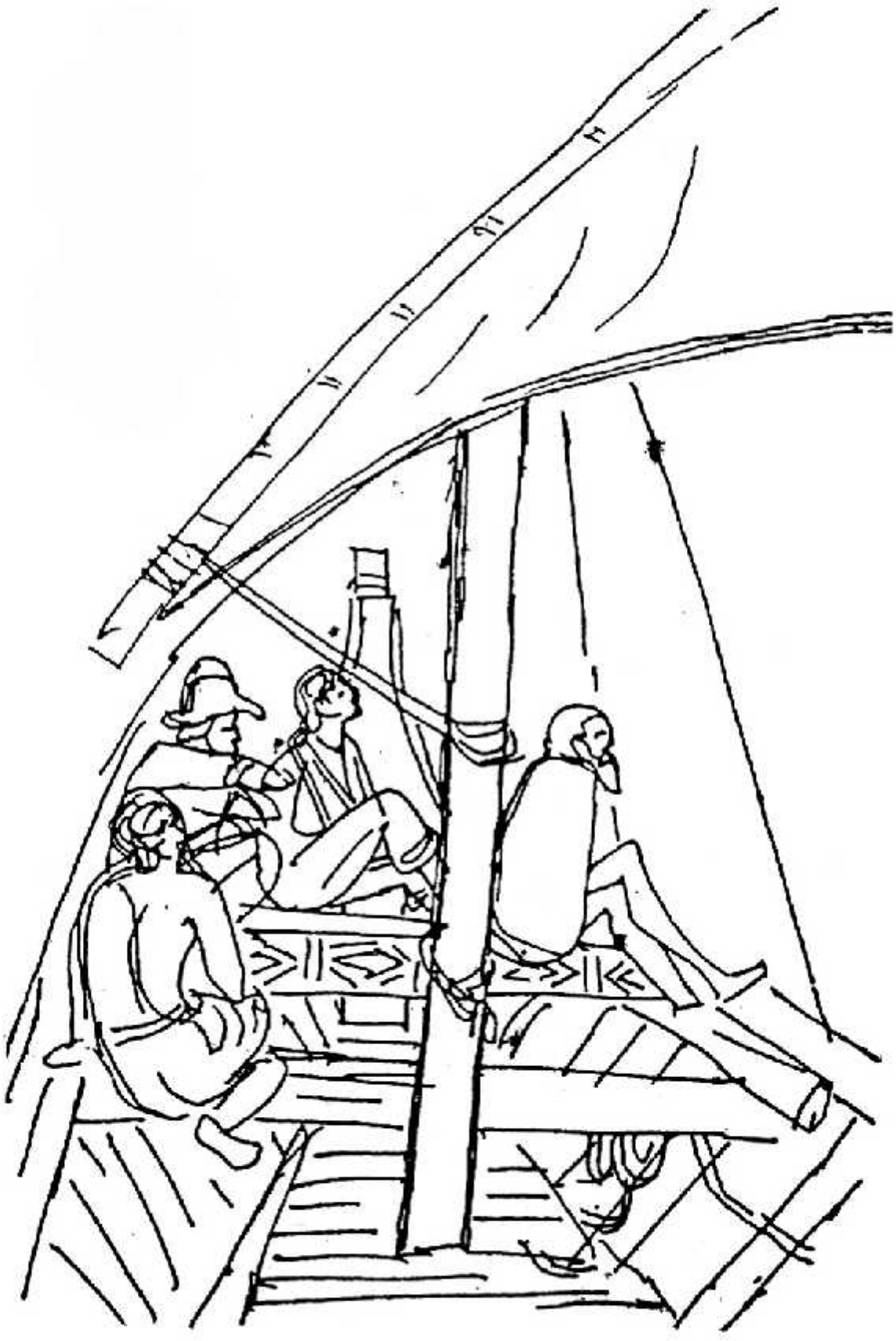

धुंआंधार के उस प्रपात में
मज़ा बहुत आता था मुझको
संगमर्मरी चट्टानों पर दौड़, फिसलना
खेल बहुत भाता था मुझको
पर अब वह है बात पुरानी
पूछ रहे क्यों मेरी राम कहानी

इस काया के टुकड़े टुकड़े
में बंटने की, घायल तन की
व्यथा भरी ये दुख की बानी
अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं
जब मेरा पानी निर्मल था
चंदा सूरज उसमें झांके
मानों वह उनका दर्पण था
चट्टानों के बीच बनाती
राह, चली जाती मैं आगे

तल की बालू, छोटे छोटे
पत्थर शालिग्राम सरीखे
साफ़ दिखाई देते ऐसे
धोकर रखे हुए हों जैसे

मेरी लहरें खिल खिल हंसतीं
छोटी छोटी चांदी की सी
ढेर मछलियां लहरों जैसी
पानी में लहराती जातीं
ताक लगाए बगुले के वे
आसानी से पकड़ न आतीं

मेरे तट पर रहने वाले
बच्चे मुझको छोड़ न पाते
घंटों घंटों घुस पानी में
खेल खेलते और नहाते

बहू बेटियां अम्मां दादी
सब लोगों की थी महतारी
सब की मैया, सबकी साथिन
उन लोगों की संगत में कब
कैसे कटते जाते थे दिन

रोज़ सबेरे महुआ बिनने
इमली, सूखी लकड़ी चुनने
टोली में सब आ जाती थीं
उनकी बातें, हंसी ठिठोली
हवा संग मुझ तक आती थीं

कान लगाए मैं सुनती थी
अब वे महुआ घर में रख कर
डोल उठाए कपड़ा धोने
थका हुआ तन, मलिन हुआ मन
घर के सारे झगड़े झंझट
मिलजुल मेरे साथ बांटने
ठंडे पानी में धंस कर फिर
तन का मन का ताप मिटाने
आ जाती थीं गौरी, तुलसा
राम दुलारी, बिन्नी, कमला

पैर डाल पानी में जब सब
लौट पहुंचती थीं बचपन में
मां की गोदी के सुख क्षण में
मुझे नरबदा मैया कहतीं
बेटी सी वो अपनी लगतीं
उनको हिये लगा बहलाती
ऐसा अपनापा पा करके
मेरी छाती हुलस, जुड़ाती

दिन को लड़के गाय चराते
भेड़, बकरियां भी ले आते
फिर अपने ढोरों के संग संग
घुस पानी में धूम मचाते

उनके दादा बाबू चाचा
का भी नित्य साथ रहता था
बैठ किनारे पर वे मिलजुल
खेत बैल की, घर दुआर की
सहते सुनते बातें अपनी
दुविधा बाधा जो मन मथती
कह देने से आधी कटती
नाते गोती, ब्याह परोजन
बतिया कर लगता हलकापन
घर घर का मैं हाल जानती
मन ही मन मैं हंसती रहती

ये तो पहले भी होता था
इनके भी जो नाना बाबा
इसी तरह बरसों पहले भी
बरखा, सूखा, धंधा खेती
को ले चर्चा करते यों ही।

बेनी बाई सास बन गईं
और बहू से मुंह फूला है
उस दिन की भी मुझे याद है
लाल पिछौरा ओढ़े बेनी
नई नवेली, पूजा करने
मेरे तट पर जब थी आई

कुछ दिन बीते, कलसा लेकर
आई, मुझसे लिपट रो पड़ी
अब बेनी की बहू रोज़ ही
अपने दुख की कथा सुनाती
मन ही मन मैं हंसती रहती

सब कुछ ऐसे ही चलता है
चलता आया जाने कब से
कब तक ऐसे चला चलेगा
आता जाता रंग धूप का
कभी खिलेगा, छांह बनेगा
अपने इन हेली मेली सी
मैं जंगल पहाड़ की बेटी
संग साथ में इन्हीं सभी के
बनते जाते युग, दिन बीते।

मैं समझी थी सब कुछ ऐसे
चलता आया चला चलेगा
बदल चुकी है बात किंतु अब
पहले सा कुछ नहीं रहेगा।
ऊंचे ऊंचे बांध बना कर
मेरी गति पै रोक लगा कर

सदियों से पुरखे जो धरती
रहे जोतते उलटी-पलटी
मेहनत बैलों हरवाहों की
खेतों में सोना बन उपजी
उन खेतों को डुबा बांध में
किन लोगों को कौन फ़ायदा
पहुंचाने का नया खेल ये
ज़ोर शोर से शुरू हो गया

पर मेरे इन भोले भाले
जनम जनम के सखा बंधु के
सरल हृदय में महानाश का
डर अंधियारे सा पैठ रहा

मुझे छोड़ के कहां जाएंगे
अपनी धरती से उखड़े तो
बिन पानी के सूख जाएंगे
अनगिनती बेमुंह के प्राणी
उनकी धरती, उनका जंगल
क्या जानें, कब डूब जाएगा
भागेंगे वे, कहां जाएंगे

धरती का श्रृंगार किए थी
जो हरियाली, वो सब जंगल
पेड़ पुराने, आदि काल से
खड़े हुए जो, मिट जाएंगे
मिट जाएगी दुनिया मेरी
डूबेगी ये प्यारी धरती
मर जाएंगे वन के प्राणी
खो जाएगी नदी नर्मदा

बातें दुख की, और कहूं क्या
पर तुम सब क्या चुप बैठोगे
रची बसी अपनी दुनिया को
बेदर्दी अंधे लोगों के
हाथों टुकड़े होने दोगे?

बोलो तुम क्या चुप बैठोगे,
चुप बैठोगे, चुप बैठोगे...

सुधा चौहान : सुधा जी हमारी 'अम्मी' हैं। वैसे उनका एक परिचय यह भी हो सकता है कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान की बेटी, कथा सम्राट प्रेमचंद की बहू और ख्यात नाम लेखक अमृतराय की धर्मपत्नी।

अम्मी शुरू से ही एकलव्य के कामों में दिलचस्पी लेती रही हैं। चकमक के लिए उन्होंने कई कविताएं और कहानियां लिखीं हैं।

गाहे-बगाहे नर्मदा योजनाओं पर भी उनसे बातचीत होती रही है—आर्थिक, तकनीकी सामाजिक और अन्य पहलुओं पर। नर्मदा के साथ उनका एक अलग ही रिश्ता है—उनका सारा बचपन नर्मदा घाटी के दो पड़ावों जबलपुर और खंडवा में बीता है। तो जब भी उनसे बातचीत होती वे एक अजीब-सी उदासी से भर उठतीं और कहतीं कि वे कुछ करना चाहती हैं। उनका यह करना हमारे लिए हमेशा एक जिज्ञासा बना रहता कि अम्मी क्या करेंगी। आखिर हमारी जिज्ञासा ख़त्म हुई, उनकी उदासी संघर्ष का आह्वान् बनकर उभरी इस कविता में।

अमृतलाल वेगड़ : इस कविता को चित्रित करने की बात उठी तो हमारे एक परिचित ने वेगड़ जी के बारे में बताया। वेगड़ जी ने परिक्रमा में आठ साल तक नर्मदा तटों की ख़ाक छानी है। इस दौरान न केवल उन्होंने यात्रा-वृतांत लिखा वरन् नर्मदा किनारे के जन-जीवन को अपने रेखाचित्रों व कोलाजों में भी उतारा है। विचार आया कि क्यों न इन चित्रों का ही उपयोग किया जाए। हमने उनसे संपर्क किया और उन्होंने सहर्ष अनुमति दे दी।

एकलव्य का प्रकाशन